तृतीय अध्याय

उपासकदशाङ्गसूत्र में वर्णित उपासकाचार

(क) द्वादश व्रत

भारतीय दर्शन में चान्द्रायण व्रत एवं उपवास आदि करने की अति प्राचीन प्रथा प्रचलित मिलती है फिर भी व्रतादि कर्म का जितना अधिक उत्कर्ष जैनदर्शन में देखने में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं।

कोशकारों ने व्रत से द्विविध तात्पर्य ग्रहण किया है। एक तो भक्ति या साधना के धार्मिक कृत्य, प्रतिज्ञा आदि को व्रत बतलाया है[1] तो दूसरे, विरति अर्थात् अलग होना, विरक्त हो जाना भी व्रत है।[2] अनियमितता, अमर्यादा, अत्याग अर्थात् हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह से अलग होना का भाव, वृत्ति अथवा क्रिया विशेष का नाम ही व्रत है।

उपासकाध्ययन में सेवनीय वस्तु का इरादापूर्वक त्याग करना व्रत बतलाया गया है।[3] सागारधर्मामृत में सवनीय अपनी स्त्री और ताम्बूल आदि के विषय में संकल्पपूर्वक नियम लेना अथवा संकल्पपूर्वक अशुभ कर्मरूप हिंसा से विरक्त होना तथा संकल्पपूर्वक पात्रदान आदि शुभ कर्म में प्रवृत्ति करना व्रत बतलाया गया है।[4]

बौद्धग्रन्थ अंगुतर निकाय में व्यक्ति की ऐसी पाँच बातें बतलाई गई हैं, जिसे करके वह नरक में जाता है, वे हैं–1. हिंसा करना, 2. चोरी करना, 3. काममिथ्याचार करना, 4. झूठ (मृषा) बोलना एवं 5. सुरा-मेरय आदि नशीली चीजों का सेवन करना। इन पाँचों से विरक्त होना व्रत विशेष है।[5] अत: स्पष्ट है कि व्रत मानव द्वारा स्वयं स्वीकृत मर्यादा है।

---

1. दे॰ (आप्टे) संस्कृत हिन्दी कोष, पृ॰ 993
2. विरतिव्रत्तम्।। त॰सू॰ 7/3
3. उपासका॰, 26/316
4. संकल्पपूर्वक: सेव्ये नियमोऽ शुभकर्मण:।
   निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा प्रवृत्ति: शुभकर्मणि।।
   सगार॰, 2/80
5. दे॰अंगु॰नि॰,-5-28-8-17-हिन्दी अनुवाद, भाग-2, पृ॰ 452

जैनदर्शन में व्रतों के अनुसार धर्म की दो श्रेणियाँ प्रतिपादित की गई हैं–आगारधर्म और अनागारधर्म।[1]

आगारधर्म का अर्थ है–घर, धन, सम्पदा आदि से जो सम्पन्न होता है, वह आगारी है, गृहस्थ है, संसारी है। जो आगारी द्वादश व्रतों को स्थूल अर्थात् मोटे रूप से पालन करते हैं, वे अणुव्रती कहलाते हैं।

जिन्होंने स्वेच्छा से घर गृहस्थी जैसे जंजाल का परित्याग कर दिया है, वे अनागारी कहलाते हैं। अनागार को पाँच महाव्रतों का पालन अनिवार्य होता है। वह इन्हें सूक्ष्म एवं गम्भीरतापूर्वक आचरण करता है और इसी कारण वे महाव्रती कहलाते हैं।

उपासकदशांग[2] सूत्रानुसार गृहस्थ द्वारा आचारित द्वादश व्रतों का अणुव्रत और शिक्षाव्रतों में विभाजित किया गया है, जबकि सिद्धान्त ग्रंथों[3] में अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत–ऐसे तीन विभागों में बांटकर द्वादश व्रतों का आचरणीय बतलाया गया है। ये द्वादश व्रत इस प्रकार हैं :–

1. अणुव्रत

अणु शब्द अण् धातु से उण् प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है–बारीक, नन्हा, लघु।[4] महाव्रतों की अपेक्षा गुण और साधना की दृष्टि से छोटा व्रत अणुव्रत है कारण यह है कि श्रमणों के महाव्रतों की अपेक्षा ये व्रत श्रावकों के लिए अल्प अर्थात् स्थूल रूप में पालनीय होते हैं। अत: अणुव्रत कहलाते हैं।

जैन आगमों एवं उत्तरवर्ती ग्रन्थों में विविध आचार्यों ने अणुव्रतों का जो उल्लेख किया है, उनके कथन की शैली में भिन्नता अवश्य है, किन्तु सभी आचार्यों

---

[1] चारित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा–अगाचारित्तधम्मे चेव अणगारचारित्तधम्मे चेव।।
स्था०सू०, 2/1/107
तथा दे० अगार्यनगारश्च
त०सू०, 7/14

[2] पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं।।
उपा०सू०, 1/12

[3] गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु–गुण–शिक्षाव्रतात्मकं चरणम्।
पञ्च त्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्यमाख्यातम्।।
रत्न०, 3/5

[4] (आप्टे) संस्कृत–हिन्दी कोष, पृ० 15
तथा मिला०पा०स०म०, पृ० 33

ने हिंसा आदि पाँच दोषों एवं पापों के आंशिक त्याग[1] को अणुव्रत माना है। अणुव्रत मूलत: तो पाँच ही माने गये हैं, परन्तु दिगम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ चारित्रसार में रात्रि भोजन त्याग को श्रावक का छठा अणुव्रत माना गया है।[2] सर्वार्थसिद्धि में यद्यपि भोजन त्याग की गणना छठे अणुव्रत के रूप में नहीं की गई है, फिर भी वहाँ यह कहा गया है कि अहिंसा व्रत की 'आलोकित भोजनपान' भावना में रात्रि भोजन विरमणव्रत का अन्तर्भाव हो जाता है।[3] पाँच अणुव्रत हैं–1. अहिंसाणुव्रत, 2. सत्याणुव्रत, 3. अचौर्याणुव्रत, 4. ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं 5. अपरिग्रहाणुव्रत।

पाँच अणुव्रत और उसके अतिचार

1. अहिंसाणुव्रत अथवा स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत

स्थूल अर्थात् मोटे रूप से प्राणों का त्याग करना एवं ऐसी हिंसा से पूर्णत: निवृत्ति होना स्थूल प्राणातिपातविरमणव्रत है। जीवन पर्यन्त के लिए दो कारण (कृत और कारित), तीन योग (मन, वचन और काया) से स्थूल हिंसा का त्याग करना श्रावक का स्थूल प्राणातिपातविरमणव्रत है।[4] गाथापति आनन्द ने भी भगवान् महावीर स्वामी के सदुपदेश को श्रवण कर दो करण और तीन योग से हिंसा का त्याग किया था।[5]

कार्तिकेयानुप्रेक्षा में बतलाया गया है कि जो अपने समान दूसरे को भी मानता हुआ उनके साथ दया सहित व्यवहार करता है, अपनी निन्दा एवं गर्हा से युक्त है,

---

[1] प्राणातिपातवितथ व्याहारस्तेय काम मूर्च्छाभ्य:।
स्थूलेभ्य: पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति।।
रत्न०, 3/6
तथा दे०योग०, 2/18

[2] पंचधाऽणुव्रतं राव्यभुक्ति: षष्ठमणुव्रतं।।
चारित्र, 13/3

[3] सर्वार्थ० 7/1, पृ० 258

[4] स्था०सू०, 5/1/2
तथा दे०, संकल्पात कृत कारित मननाद्योगत्रसस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहु: स्थूलवधाद्विरमणं निपुणा:।।
रत्न०, 3/7

[5] थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइ जावज्जीवाय दुविहं तिविहेणं न करेमि।
न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।।
उपा०सू०, 1/13

महान् आरम्भों का परिहार करता हुआ जो त्रसजीवों के घात को मन, वचन, काय से न स्वयं करता है, न दूसरों से कराता है और न करते हुए पुरुष की अनुमोदना ही करता है, उसको यह पहला अहिंसाणुव्रत होता है।[1] पं० आशाधर के अनुसार–शान्त हो गये हैं आठ कषाय जिसके, दया के द्वारा कोमल है हृदय जिसका तथा मन, वचन, काय सम्बन्धी कृत, कारित, अनुमोदना–इन नौ संकल्पों से त्रसजीवों की द्रव्य और भाव हिंसा नहीं करना और प्रयोजनवश की जाने वाली स्थावरहिंसा से भी डरता तथा यथासंभव उसमें भी यत्न करना अहिंसाणुव्रत है।[2]

अतः स्पष्ट है कि श्रावक अहिंसाणुव्रत का पालन करने हेतु यथाशक्ति शुद्ध प्रवृत्ति करता है, किन्तु गृहस्थावस्था में रहने के कारण ज्ञात-अज्ञात रूप में उससे आंशिक रूप में इस व्रत का उल्लंघन हो जाना स्वाभाविक है। व्रत में पूर्ण प्रवृत्ति न होने के कारण श्रावक की यह भूमिका स्थूल अर्थात् आंशिक त्याग की कही गई है। इस व्रत का पालन करते हुए श्रावक निरपराध त्रस एवं स्थावर जीवों की हिंसा का मन, वचन और कायपूर्वक त्याग करता है।

अहिंसाणुव्रत के अतिचार

अहिंसा के पालन के लिए जितना हिंसा से बचना अनिवार्य है, उतना ही अहिंसा के अतिचारों से भी दूर रहना बतलाया है। जैनागम स्थानांगसूत्र में व्रत के खण्डन की चार श्रेणियाँ बतलायी गई हैं[3] वे इस प्रकार हैं :–

अतिक्रम–व्रत में स्खलना का मन में चिन्तन करना

व्यतिक्रम–व्रत को खण्डित करने से साधना जुटाना

अतिचार–व्रत का आंशिक रूप से खण्डन करना

अनाचार–व्रत का खण्डन करना।

---

1. कार्ति०, 30-31
   तथा मिलाइए चारित्र, पृ० 238
   धर्मोपदो०, 4/4
2. शान्ताद्यष्टकषायस्य संकल्पैर्नवभिस्त्रसान्।
   अहिंसतो दयार्द्रस्य स्यादहिंसेत्यणुव्रतम्।।
   सागार०, 4/7
   तथा दे०, उमा श्रावका०, 333
3. तिविधे अतिक्कमणे पण्णत्ते .... त्रिविधे वइक्कमे पण्णत्ते.........
   ....तिविधे अइयारे पण्णत्ते..........त्रिविधे अणायारे पण्णत्ते।।
   स्था०सू०, 3/4/40-443

अनभिज्ञता वश व्रतों में कहीं स्खलना हो जाती है, तो उसे अतिचार कहा जाता है। उपासकदशांगसूत्र में स्थूल प्राणातिपातविरमणव्रत के जिन पाँच अतिचारों को गिनाया गया है, वे इस प्रकार हैं–बन्ध, वध, छविच्छेद, अतिभार और भत्तपानविच्छेद[1] जबकि तत्त्वार्थसूत्र में बन्ध, वध, विच्छेद, अतिभारारोपण और अन्नपान निरोध, ये पाँच अहिंसा अणुव्रत के अतिचार माने गये हैं–बन्धवधच्छेदाऽतिभारारोपणाऽन्नपान निरोधाः।[2]

रत्नकरण्डकश्रावकाचार में छेदन, बन्धन, पीड़न, अतिभारारोपण और आहारवारण–इन पाँच अतिचारों का उल्लेख किया गया है।[3] सागारधर्मामृत में पण्डितप्रवर आशाधर ने बन्ध, वध, छेद, अतिभारारोपण तथा भुक्तिनिरोध को अहिंसाणुव्रत के अतिचार बतलाये हैं–

> मुञ्चन् बन्धं वधच्छेददावतिभारादिरोपणम्।
> भुक्तिरोधं च दुर्भावाद् भावनाभिस्तदाविशेत्।।[4]

इसके अलावा आचार्य अमृतचन्द्र ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में तथा आचार्य अमितगति ने अपने श्रावकाचार में अहिंसाणुव्रत के जो पाँच अतिचार बतलाए हैं, वे इन्हीं अर्थों में मिलते हैं।[5] समणसुत्तं में भी उपरोक्त पाँच अतिचारों का ही नामोल्लेख आया है।[6]

इस प्रकार शाब्दिक भिन्नता को छोड़ कर समस्त जैन आम्नाय में अतिचार विषयक एक-सी ही मान्यता दृष्टिगोचर होती है। इन पाँचों का विशेष निम्न प्रकार वर्णन मिलता है–

---

1. तयाणंतरं च णं थूलगस्स पाणाइवायवेरमणस्य समणो
   वासएणं पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा
   तंजहा-बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाण वोच्छेए।
   उपा०सूत्र०, 1/41
2. त०सू०, 7/20
3. रत्न०, 3/8
4. सागार०, 4/14
5. पुरुषार्थ०, 183
   तथा अमित०श्राव०, 7/3
6. बंधवहच्छविच्छेए, अइभारे भत्तपाणवुच्छेए।
   कोहाइदूसियमणो, गोमणुयाईण नो कुज्जा।।
   समण०, 310

बंध

पशु या दासी को ऐसा बांधना, जिससे उसे कष्ट हो, बन्ध कहा गया है।[1] अतः किसी को बिना कारण बांधना, उसे कष्ट देना, उसकी स्वाभाविक वृद्धि को रोकना बंध हिंसा है।[2]

वध

वध का अर्थ है-अपने आश्रित किसी प्राणी को लकड़ी, चाबुक, लात और घूंसों से मारना जिससे उसका मर जाना वध है। इसको प्राणापहरण भी कह सकते हैं। उपासकदशांगटीका के अनुसार-वध का अर्थ किसी भी प्राणी को लकड़ी आदि से मारना मात्र है।[3]

छविच्छेद

छविच्छेद अर्थात् अंग छेदन करना। क्रोध में आकर किसी का अंग काट डालना, अपनी प्रसन्नता के लिए कुत्ते आदि की पूंछ काटना छविच्छेद है।[4] समाज में अंगच्छेदन को बुरी दृष्टि से देखा जाता है। अंगभंग करना सामाजिक अपराध एवं हिंसा है जिससे मानव को सदा ही दूर रहना चाहिए।

अतिभार

सामर्थ्य से अधिक मनुष्य या पशु पर बोझ लादना या विकलांग प्राणी पर भार डालना या लादना तथा उससे अधिक काम लेना अतिभार अतिचार है।[5] यह भी हिंसा है।

---

1. बन्धेद्विपदादीनारज्जादीना संयमनं।।
उपा०टीका, पृ० 25 तथा अधिक के लिए देखिए प्रश्नो०श्राव०, 12/135
लाटी०, 4/264
2. गृहस्थ०, 1 पृ० 184
3. 'वहे' त्ति वधो यष्ट्यादिभिस्ताडनं।।
उपा०टीका, पृ० 25
तथा मिलाइए लाटी०, 4/262
4. छविच्छेए त्ति शरीरावयच्छेदः।।
उपा०टीका, पृ० 25
तुलना कीजिए लाटी०, 4/262
5. 'अइभारे' त्ति अतिभाररोपणं तथाविधशक्ति विकलानां महाभाररोपणं।।
उपा०टीका, पृ० 25
तथा देखिए प्रश्नो०श्राव०, 12/138

भत्तपान विच्छेद

मूक प्राणी या पशु को भूखा प्यासा रखकर और समय पर चारा पानी नहीं देने को भत्तपानविच्छेद बतलाया गया है।[1] लाटी संहिता में भी कहा गया है कि दासी-दास, भाई-बन्धु, पुत्र-स्त्री आदि अपने आश्रित मनुष्यों को या गवा, भैंस आदि पशुओं को भोजन या घास, जल आदि खाने पीने की वस्तु न देना या कम भोजन देना भत्तपानविच्छेद अतिचार है,[2] हिंसा है।

अहिंसक उपासक को चाहिए कि वह उपर्युक्त वर्णित पाँच अतिचारों से बचें, जिससे उसके संयम की सम्यक् आराधना हो सके।

2. सत्याणुव्रत या स्थूल मृषावादविरमणव्रत

श्रावक का दूसरा व्रत स्थूल मृषावाद विरमण व्रत है। गणधर सुधर्मास्वामी के शब्दों में-सत्य अनवद्य और पाप रहित वचन है।[3] प्रश्नव्याकरणसूत्र में अलीक वचन को असत्य कहा है।[4] तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वाति ने असद्भिधानमनृतम्[5] कहकर यह स्पष्ट कर दिया है कि वह वचन जिससे प्राणियों को पीड़ा पहुँचती है, चाहे वह सत्य अथवा असत्य ही क्यों न हो, असत्य ही कहलाता है।

इस प्रकार रत्नकरण्डश्रावकाचार में भी आचार्य समन्तभद्र सत्याणुव्रत का स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि जो लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध एवं धर्मविरुद्ध स्थूल असत्य न स्वयं बोलता है, न दूसरों से बुलवाता है, साथ ही दूसरों की विपत्ति के लिए कारणभूत सत्य को न स्वयं कहता है, न दूसरों से कहलवाता है, वह सत्याणुव्रती है।[6]

---

1. 'भत्तपाणवोच्छेय' त्ति अशनपानीयाद्यप्रदानं।।
उपा०टीका, पृ० 25
2. नराणां गोमहिष्यादितिरश्चां वा प्रमादतः।
तृणाद्यन्नादिपातानां विरोधो व्रतदोशकृत्।।
लाटी०, 4/271
तथा दे० पशुनां यो नृणां धत्ते चान्नपाननिराधनम्।
अन्नपाननिरोधः स्यादतिचारोऽपि तस्य वै।।
प्रश्नो०, 12/139
3. सच्चं खु अणवज्जं वयंति।। सूत्र०सू०, 6/23
4. जंबू! बिइयं अलियवयणं।। प्रश्न०सू०, 1/2/1
5. त०सू०, 7/9
6. स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि।
विपदे यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावाद वैरमणम्।। रत्न०, 3/9

चारित्रसार में भी आता है कि स्नेह, मोह और द्वेष की तीव्रता से जो असत्य बोला जाता है, उसके त्याग में आद रखना गृहस्थ का दूसरा सत्याणुव्रत है।[1]

श्रावकप्रतिक्रमण में श्रावक के द्वादश व्रतों के ग्रहण में द्वितीय स्थूल मृषावाद के पाँच भेद किए हैं। वे हैं–कन्या के लिए, गो आदि पशु के लिए, भूमि के लिए, धरोहर के लिए और कूट साक्षी (झूठी गवाही) के लिए।[2] इन पाँचों का विशेष अध्ययन निम्न प्रकार है–

कन्नालीए : कन्या विषयक असत्य

कन्या के सम्बन्ध में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से असत्य बोलना जैसे कि अच्छी लड़की को खराब और खराब लड़की को अच्छी कहना या एक कन्या के बदले में दूसरी कन्या को दिखलाना। छोटी उम्र की कन्या को बड़ी और बड़ी उम्र की कन्या को छोटी बतलाना। यह सब कन्यापरक मृषावाद है। यहाँ कन्या शब्द से उपलक्षण में कुमार, युवक, वृद्ध आदि सभी द्विपद मनुष्यों का ग्रहण कर लेना चाहिए।

गोवालीए : गो विषयक असत्य

गाय के सम्बन्ध में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से असत्य बोलना जैसाकि दुबली-पतली, मरियल गाय को हृष्ट-पुष्ट, सबल और सुडौल बतलाना। कम दूध देने वाली गाय को अधिक दूध देने वाली कहना गो विषयक मृषावाद है। गो शब्द से उपलक्षण में यहाँ समग्र चौपाये जानवारों सम्बन्धी पशु समझ लेना चाहिए।

भौमालिए : भूमि विषयक असत्य

भूमि विषयक असत्य भी असत्य का एक भेद है। भूमि विषयक जैसे–अपनी जमीन को पराई कहना या पराई को अपनी कहना, उपजाऊ भूमि को बंजर और बंजर को उपजाऊ कहना, अधिक काल की जोती जमीन को कम काल की जोती हुई बतलाना भूमि विषयक झूठ है। यहाँ उपलक्षण से भूमि पर पैदा होने वाले पदार्थ या रुपये, धन, जायदाद आदि सभी से सम्बन्धित असत्य के विषय में समझ लेना चाहिए।

---

1. चारित्र०, पृ० 239
2. (क) दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं-कन्नालीए, गोवालीए
भोमालीए, णासावहारो, कूडसक्खिज्जे।।
आ०सू०, पृ० 99
(ख) तथा मिला० कन्या-गो-भूम्यलीकानि, न्यासापहरणं तथा।
कूटसाक्ष्यं च पञ्चेति, स्थूलासत्यान्यकीर्तयन्।।
योग०, 2/54
(ग) सागार०, 4/39
(घ) उपा०टीका, पृ० 27

णासावहारे : न्यासापहरण (धरोहर) विषय असत्य

किसी को प्रामाणिक या ईमानदार मानकर सुरक्षा के लिए या संकट आ पड़ने पर बदले में कुछ अर्थराशि लेकर अमानत के तौर पर किसी के पास अपना धन, मकान या जो कोई भी वस्तु रखी जाती है, उसे न्यास, धरोहर, गिरवी या बंधक कहते हैं। ऐसे न्यास के विषय में झूठ बोलना या अधिक दिन जो जाने पर लोभवश उसे हड़प लेना या धरोहर रखने वाला अपनी चीज मांगने आए, तब मुकर जाना, उल्टा उसे ही झूठा बतलाकर बदनाम करना न्यासापहार असत्य कहलाता है।

कूडलेहकरणे कूटलेखकरणे : कूटसाक्षी (गवाही) विषयक असत्य

किसी झूठी बात को सिद्ध करने के लिए झूठी गवाही देना या झूठे गवाह तैयार करके झूठी साक्षी दिलवाना कूटसाक्षी विषयक असत्य कहलाता है। किसी की झूठी या पापपूर्ण बात को भी सच्ची सिद्ध करने के लिए झूठ बोलकर, झूठी सफाई देना आदि सब कूटसाक्षी विषयक असतय के प्रकार हैं।

उपासकदशांगसूत्र में श्रावक आनन्द ने भी 'यावज्जीवन दो कारण तीन योग से स्थूल मृषावाद का प्रयोग न स्वयं करूँगा और न दूसरों से कराऊँगा'[1]–ऐसा स्थूल मृषावाद का त्याग किया था।

स्थूल मृषावाद विरमणव्रत के अतिचार

गृहस्थावस्था में रहते हुए कभी स्वार्थवश, कभी द्वेषवश और कभी व्यापार के निमित्त श्रावक के द्वारा जो कथंचित् असत्य व्यवहार हो जाता है, वही अतिचार है। उपासकदशांगसूत्र में स्थूल मृषावादविरमणव्रत के पाँच निम्न अतिचार बतलाए गये हैं–1. सहसाभ्याख्यान, 2. रहस्याभ्याख्यान, 3. सवदारमन्त्रभेद, 4. मृषोपदेश और

---

1. तयाणंतरं च णं थूलगं मुसावायं पच्चक्खाइ, जावज्जीवाए
दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा कायसा।।
उपा०सू०, 1/14

5. कूटलेखकरण।[1] जबकि तत्त्वार्थसूत्र में कुछ भिन्नता के साथ मिथ्योपदेश, रहस्य अभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद–इन पाँच अतिचारों की गणना की गई है :

मिथ्योपदेशरहस्याभ्याख्यानकूटलेख क्रियान्यासापहार साकारमन्त्रभेदाः।।[2]

रत्नकरण्डक श्रावकाचार में भी परिवाद, रहस्य अभ्याख्यान, पैशुन्य, कूटलेखकरण तथा न्यासापहार को सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार बतलाया गया है।

परिवाद रहस्याख्या पैशुन्यं कूटलेखकरणं च।
न्यासापहारितादि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य।।[3]

इन्हीं का यहाँ विशेष अध्ययन करते हैं–

सहसा अभ्याख्यान

सहसा अर्थात् बिना विचारे अचानक और अभ्याख्यान का अर्थ दोषारोपण करना है। इस प्रकार 'तू चोर है' इत्यादि बिना विचारे ही दूसरों पर मिथ्या आरोप लगाना सहसा अभ्याख्यान है।[4] जैन आचार ग्रन्थ के अनुसार सज्जन को दुर्जन, गुणी को अवगुणी, ज्ञानी को अज्ञानी, ब्रह्मचारी को व्यभिचारी कहना भी सहसा अभ्याख्यान है।[5]

रहस्साभ्याख्यान

रह एकान्त का द्योतक है। उसी का आधार लेकर मिथ्या दोषारोपण करना रहस्याभ्याख्यान है–रहस्य अब्भक्खाणे त्ति रहः एकान्त स्तेन हेतुना अभ्याख्यान

---

[1] तयाणंतर च णं थूलगस्य मुसा वाय-वेरमणस्य पंच अइयारा
जाणियव्वा न समायरियव्वो। तंजहा-सहसा अब्भक्खाणे
रहसा अब्भक्खाणे सदार-मंत-भेए, मोसोवएसे, कूड-लेह करणे।।
उपा०सू०, 1/42

[2] त०सू०, 7/21
तथा देखिए सागार०, 4/45

[3] रत्न०, 3/10

[4] सहसा अनालोच्याभ्याख्यानम् असददोषाध्याक्षेपणम्।
सहसाभ्याख्यान यथा चौर स्त्वमित्यादि।।
उपा०टीका, पृ० 28

[5] (देवेन्द्र मुनि) जैन०सि० और स्व०, पृ० 305

रहोभ्याख्यानम्।[1] द्रव्य के लोभ में आकर स्त्री पुरुष या अन्य के छिपे कार्य या बात को प्रकट करने को भी रहस्साभ्याख्यान की संज्ञा दी गई है।[2]

स्वदारमंत्रभेद

अपनी स्त्री (पत्नी) की गुप्त बातों को प्रकट करना स्वदारमंत्रभेद अतिचार कहलाता है। इसका त्याग करना परम आवश्यक है, कारण कि अपनी स्त्री की गुप्त बात सत्य होने पर भी उसको प्रकाशित करने से संभव है कि वह लज्जावश मृत्यु का वरण कर ले।[3]

मोसोवसये-मृषोपदेश

अनुपयोगी सहसा दूसरे को झूठा उपदेश देना अथवा कपटपूर्वक कहना कि 'मैंने ऐसे-ऐसे असत्य उपदेश देकर दूसरे को जीत लिया' इत्यादि कपट युक्त वार्तालाप करना, दूसरे को कष्ट में डालने के लिए असत्य उपदेश देना एवं अपने स्वयं असत्य में प्रवृत्ति न कर दूसरे को उसमें प्रवृत्ति कराना मृषोपदेश अतिचार है।[4] किसी कार्य या द्रव्य कमाने के लिए भी झूठ बोलना मिथ्योपदेश बतलाया गया है।[5]

कूटलेखकरण

झूठा लेख लिखना कूटलेखकरण है। यह अतिचार प्रमाद के वश से या अविवेक से झूठा लेख लिखने से लगता है, मैंने झूठ बोलने की सौगंध ली है, किन्तु झूठे खत लिखने का व्रत नहीं लिया है ऐसा विचारपूर्वक झूठा पत्र व लेख आदि

---

[1] उपा० टीका, पृ० 28
तथा मिलाइए लाटी० 5/19

[2] प्रश्नो०श्राव०, 13/4

[3] (क) स्वदारसम्बन्धिनो मन्त्रस्य विश्रम्भजल्पस्य भेदः-प्रकाशनं।
स्वदारमन्त्रभेदः, एतस्य.........परमार्थतोऽसब्वसतस्येति।।
उपा०टीका०, पृ० 28

(ख) श्रा०ध०द०, पृ० 222

[4] परेषामसत्योपदेशः सहसाकारानाभोगादिना, त्याजेन वा यथा।
'अस्माभिस्तदिदमिदं..........साक्षात्कारेणासत्येऽप्रवर्त्तनादिति।।
उपा०टीका, पृ० 28

[5] प्रश्नो०श्राव०, 13/33

लिखना अपने संयम के विरुद्ध आचरण करना कूटलेखकरण अतिचार है।[1] दूसरों को ठगने के लिए भी लेख आदि लिखा जाना कूटलेखकरण कहलाता है।[2]

इस प्रकार स्थूल मृषावादविरमण व्रत के जो पाँच अतिचार उपासकदशांगसूत्र में बतलाए गये हैं, उन्हीं का अनुसरण आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में किया है, किन्तु उन्होंने सहसाभ्याख्यान के स्थान पर न्यासापहार को इस व्रत का अतिचार माना है। आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्डकश्रावकाचार में सत्याणुव्रत के अतिचारों में परिवाद व पैशुन्य इन दो नए अतिचारों का समावेश करके मिथ्योपदेश व साकार मन्त्र भेद अतिचार को छोड़ दिया है। इस प्रकार स्थूल मृषावादविरमण व्रत के अतिचार प्रतिपादन में अवश्य ही आचार्यों में आंशिक भिन्नता है।

3. अचौर्याणुव्रत वा स्थूल अदत्तादानविरमण व्रत[3]

श्रावक का यह व्रत अस्तेय या अचौर्य व्रत के नाम से भी जाना जाता है। 'अदत्त' का अर्थ है–बिना दी गई 'आदान' का अर्थ है–ग्रहण करना। इस प्रकार बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करना अदत्तादान है। बौद्ध निकाय ग्रंथों में इसके लिए अदिन्नादान पद मिलता है। जैन श्रमण के लिए बिना अनुमति के तृण-ग्रहण करना भी वर्ज्य है, जबकि श्रावक बिना दी हुई वस्तु को स्थूल रूप से ग्रहण नहीं करने से अदत्तादानविरमण व्रत का पालक कहा गया है।

आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र में अस्तेय अणुव्रत के लिए 'अदत्तादान स्तये' शब्द प्रयुक्त करते हुए स्पष्ट कहा है कि स्तेयबुद्धि से अर्थात् चोरी करने के अभिप्राय से वस्तु को ग्रहण करना अदत्तादान है।[4]

जो दूसरों की रखी हुई, गिरी हुई, भुली हुई वस्तु को और बिना दिए धन को न तो स्वयं लेता है, न उठाकर दूसरों को देता है, उसे अचौर्याणुव्रतधारी कहते हैं–

---

1. 'कूडलेहकरणे' त्ति असदभूतार्थस्य लेखस्य विधानमित्यर्थः, एतस्य
   चातिचारत्वं प्रमादादिना दुर्विवेकत्वेन वा, मथा मृषावादः प्रत्याख्यातो
   ऽयं तु कूट लेखो न मृषावादनम्।।

   उपा०टीका, पृ० 28
2. (क) पश्नो०श्राव०, 13/35
   (ख) लाटी०, 5/20
3. थूलाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं।

   स्था०सू०, 5/1/2
4. त०सू०, 7/10

निहितं वा पतितिं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम्।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपाहरणम्।।[1]

आचार्य सोमदेव के उपासकाध्ययन में पानी, घास वगैरह जो वस्तु सबके भोगने के लिए हैं, उनके सिवाय शेष सब बिना दी गयी परवस्तु को ले लेना चोरी है।[2] अमितगतिश्रावकाचार के अनुसार–खेत में, ग्राम में, वन में, गली में, मार्ग में, घर में, खलिहान में अथवा ग्वाल टोली में रखे, गिरे, पड़े या नष्ट भ्रष्ट हुए पराय द्रव्य को ग्रहण न करना अचौर्याणुव्रत कहलाता है।[3]

उपासकदशांगसूत्र में कहा है कि अदत्तादान विरमण व्रतधारी श्रावक आनन्द ने भगवान् से जीवनपर्यन्त दो करण, तीन योग से अदत्तादान सेवन न करने की प्रतिज्ञा ली थी।[4]

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

अचौर्य अर्थात् अस्तेय व्रत का सम्यक् प्रकार से प्रतिपालन करते हुए कभी प्रमाद या असावधानी से जो दोष लग जाते हैं, वे पाँच प्रकार के अतिचार हैं–स्तेनाहृत, तस्कर प्रयोग, विरुद्ध राज्यातिक्रम, कूट तुला-कूट-माण तथा तत्प्रतिरूपक व्यवहार।[5]

तत्त्वार्थसूत्र में स्तेनप्रयोग, स्तेन आहृतादाना, विरुद्ध राज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान और प्रतिरूपक व्यवहार को अस्तेय अणुव्रत के अतिचार बताया गया है–स्तेनप्रयोग-तदाहृतादानविरुद्ध-राजयातिक्रमहीनाधिक-मानोन्मान प्रतिरूपक-व्यवहाराः।[6] आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्डकश्रावकाचार में विरुद्ध राज्यातिक्रम के

---

1. रत्न०, 3/11
2. दे० उपासका०, 26/364
3. (क) क्षेत्रेग्रामेऽरण्ये रथ्यायां पथि गृहे खलने घोषे।
   ग्राहयं न परद्रव्यं भ्रष्टं नष्टं स्थितं वाऽपि।। अमित०श्राव०, 6/59
   (ख) तथा मिलाइए–पतितं विस्मृतं नष्टं स्थितं स्थापित माहितम्।
   अदतं नाददीतं स्वं परकीयं क्वचित्सुधीः।। योग०, 2/66
   (ग) दे०-सुधर्म०, पृ० 248
4. तयाणंतरं च णं थूलगं अदिण्णादाणं पच्चक्खाइ जावज्जीवाय।
   दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।।

   उपा०सू०, 1/15
5. तयाणंतर च ण थूलगस्स अदिण्णादान वेरमणस्स पंच अइयारा
   जाणियव्वा न समारियव्वा, तंजहा-तेणाहड़े, तक्करप्पओगे, विरुद्ध
   -रज्जाइक्कमे, कूड तुल्ल-कूडमाणे, तत्पडिरुवगववहारे।। उपा०सू०, 1/43
6. त०सू०, 7/22

स्थान पर विलोप शब्द का प्रयोग किया है[1] किन्तु उसका भी फलितार्थ राजकीय कानून का उल्लंघन करना ही है। आचार्य सोमदेव ने उपासकाध्ययन में सत्याणुव्रत से पहले अचौर्याणुव्रत की चर्चा की है तथा बाट तराजू का कमती-बढ़ती रखना, चोरी का उपाय बतलाना, चोरी का माल खरीदना, देश में युद्ध छिड़ जाने पर पदार्थों का संग्रह करके रखना, ये अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार माने हैं।[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि अस्तेयव्रत के अतिचारों को लेकर आचार्य सोमदेव का दृष्टिकोण अन्य आचार्यों से कुछ भिन्न है। उक्त पाँचों अतिचारों का विशेष निमन प्रकार है-

स्तेनाहृत

चोर द्वारा चोरी करके लायी हुई बहुमूल्य वस्तु को लोभ के वशीभूत होकर सस्ते में खरीदना स्तेनाहृत अतिचार है।[3] प्रश्नोत्तरश्रावकाचार में बतलाया गया है कि मनुष्य को चोरी करने की प्रेरणा देना अथवा चोरी के उपाय सुझाना स्तेन प्रयोग है। लाटी संहिता में किसी लोभ के वश होकर अन्य मनुष्यों को चोरी करने की प्रेरणा करने को बुद्धिमान लोग स्तेनाहृत कहते हैं-

> परस्य प्रेरणं लोभात्स्तेयं प्रति मनीषिजा।
> स्तेन प्रयोग इत्युक्तः स्तेयातीचारसंज्ञकः।।[4]

चुराई हुई वस्तु को अपने घर में रखना, चोर-डाकू आदि को अपने घर में आश्रय देना, यह भी स्तेनाहृत[5] है। श्रावक इन कार्यों से सदैव बचना चाहिए।

तस्कर प्रयोग

तस्करों को तस्कर कृत्य करने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन देना, उस कार्य की प्रशंसा करके उस कार्य को उत्तेजना देना तस्कर प्रयोग है। उपासकदशांगटीका के अनुसार बिना इरादा पूर्वक दूसरे को चोरी का उपदेश देना-यह तस्कर प्रयोग अतिचार है।[6]

---

[1] चौरप्रयोगचौरार्थादानं विलोपसदृशसन्निमेश्राः।
हीनाधिक विनिमानं पञ्चास्तये वयतीपाताः।। रत्न०, 3/12

[2] उपासका० श्लोक-370

[3] 'तेणाहडे' त्ति स्तेनाहृतं चौरानीतं, तत्समर्घमिति लोभात्काणक्रयेण गृहतोऽतिचरति।।
उपा०टीका, पृ० 31

[4] प्रश्नो०श्राव० 14/30

[5] लाटी० 5/49

[6] (देवेन्द्र मुनि जी) जैन०सि० और स्व०, पृ० 309

विरुद्धराज्यातिक्रम

जो राज्य एक-दूसरे के विरोधी हैं, ऐसे विरुद्ध राज्य का उल्लंघन करना अर्थात् राज्य की सीमा का अतिक्रमण करना विरुद्धराज्यातिक्रम है। उपासकदशांगसूत्र की टीका में विदेशी (विरोधी) राजाओं की निषिद्ध सीमा का उल्लंघन करना तथा राज्यविरुद्ध काम करना विरुद्धराज्यातिक्रम ही माना गया है।[1] अलग-अलग राज्यों के राज्य से सामान को कर आदि से बचाकर लाना तथा दूसरे राज्य की निषिद्ध वस्तु को अपने राज्य में लाकर बेचना विरुद्धराज्यातिक्रम माना है। जो व्यक्ति राजनीति को छोड़कर व्यापार करता है और अधिक धन ग्रहण करता है, उसे इस अतिचार का अधिक दोष लगता है।[2]

कूट तुला कूट मान

तुला का अर्थ है-तराजू और मान का अर्थ है-माप (तोलने के बांट)। किसी भी वस्तु के लेन देन में न्यूनाधिक परिमाण रखना कूट तुला-कूट माप अतिचार है।[3] प्रश्नोत्तरश्रावकाचार में खरीदने के लिए बाट या गज आदि का परिमाण अधिक रखना और बेचने के लिए न्यून बाट एवं गज आदि को रखना हीनाधिक मानोन्मान अतिचार बतलाया गया है।[4] जैनआचारग्रंथ में कहा है कि यदि व्यापारी बाट सही रखकर भी तोलते समय डण्डी मारता है या नापते समय हाथ को आगे पीछे करता है, तो यह भी चोरी ही है।[5] अतः इस दोष से संयमी को दूर रहना चाहिए।

तत्प्रतिरूपव्यवहार

किसी श्रेष्ठ वस्तु में उसी के सदृश नकली वस्तु मिलाकर देना तत्प्रतिरूपक व्यवहार है जैसे गेहूँ में कंकड़, काली मिर्च में पपीते के बीज, असली घी में वनस्पति तेल आदि मिलाना। यह सब चोरी के उपाय हैं।

---

[1] उपा० टीका०, पृ० 31
तथा देखिए-प्रश्नो०श्राव० 14/31

[2] 'विरुद्धरज्जाइकम्मे' त्ति विरुद्धनृपयो राज्यं तस्यातिक्रमः
अतिलङ्घनं विरुद्धराजयातिक्रमः।
उपा०टीका, पृ० 31

[3] 'कूडतुलकूडमाणे' त्ति तुला-प्रतीता, मानं-कुडवादि, कूटत्वं-न्यूनाधिकत्वं,
ताभ्यां न्यूनाभ्यां ददतोऽधिकाभ्यां गृह्यतोऽतिचरति-
उपा०टीका०, पृ० 31

[4] प्रश्नो०श्राव०, 14/32

[5] (देवेन्द्र मुनि) जैन०सि० और स्व०, पृ० 310

उपासकदशांगटीका में इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि–नकली वस्तु को असली कहकर बेचना या असली वस्तु में नकली मिलाकर बेचना एवं असली बतलाकर नकली देना तत्प्रतिरूपक व्यवहार है।[1] इस प्रकार दूसरों को ठगने की इच्छा से अधिक मूल्य के पदार्थों में जो उसमें अच्छी तरह मिल सके, ऐसा कम मूल्य का पदार्थ मिला देना प्रतिरूपक व्यवहार नाम का पांचवां अतिचार कहलाता है–

निक्षेपणं समर्थस्य महार्घे वञ्चनाशया।
प्रतिरूपकनामा स्याद व्यवहारो व्रतक्षतौ।।[2]

4. ब्रह्मचर्याणुव्रत वा स्वदारसन्तोषव्रत

श्रावक का यह व्रत ब्रह्मचर्य अणुव्रत के नाम से भी जाना जाता है। श्रावक अपने आचरण करने योग्य नियमों को ध्यान में रखता हुआ यह व्रत भी ग्रहण करता है कि मैं अपनी विवाहित पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के साथ किसी तरह का मैथुन सम्बन्ध नहीं रखूंगा। स्वदारसन्तोष व्रत ग्रहण करने से श्रावक कामवासना से पूर्ण निवृत्त तो नहीं हो जाता है, किन्तु संयमित अवश्य हो जाता है। श्रावक और श्राविका दोनों ही इस व्रत को ग्रहण करके अपने धर्म का निर्वाह करते हैं। इसी कारण इसे ब्रह्मचर्याणुव्रत नाम से अधिक जाना जाता है।

आवश्यकसूत्र में भी आया है कि विवाहित स्त्री में ही संतोष रखकर सब प्रकार के मैथुन सेवन का त्याग करना चाहिए। इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि अपने द्वारा अथवा पूज्य गुरुजन, देव-देवी तथा तिर्यञ्च सम्बन्धी मैथुन भावना से विरत होना परमावश्यक है।[3]

रतनकरण्डकश्रावकाचार,[4] सागारधर्मामृत[5] एवं सर्वार्थसिद्धि[6] आदि ग्रंथों में

---

1. तत्पडिरुवगववहारेत्ति तेन प्रतिरूपकं सदृशं तत्प्रतिरूपकं तस्य
विवधमवहरणं व्यवहार:–
उपा०टीका०, पृ० 31
तथा देखिए प्रश्नो०श्राव० 14/34
2. लाटी० 5/56
3. आव०सू०, पृ० 101
4. न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामपि।।
रत्न०, 3/13
5. सागार०, 4/42
6. सर्वार्थ०, 7/20

परस्त्री के साथ मैथुन सम्बन्ध नहीं रखना ब्रह्मचर्याणुव्रत बतलाया गया है, किन्तु आचार्य सोमदेव ने उपासकाध्ययन में विवाहित स्त्री और वेश्या के अलावा अन्य स्त्रियों को माता, बहिन या पुत्री मानने को ही ब्रह्मचर्याणुव्रत स्वीकार किया है–

वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माता स्वसा तनजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे।।[1]

वस्तुत: इस व्रत के लिए स्वदारसन्तोष और परदारानिवृति दोनों शब्द प्रयुक्त हुए हैं। स्वदारसन्तोष का अर्थ तो अपनी पत्नी से ही सन्तुष्ट रहना है, किन्तु सोमदेव जैसे आचार्यों ने परदारनिवृत्ति का शाब्दिक अर्थ दूसरों की पत्नी से निवृत रहना किया है। इसी कारण उन्होंने वेश्याएँ अथवा खरीदी हुई स्त्री के साथ मैथुन सम्बन्ध रखने को इस व्रत में निषेध नहीं माना है, किन्तु यह अर्थ इस व्रत की मूल भावना के अनुकूल नहीं है। अत: अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के साथ किसी तरह का मैथुन सम्बन्ध नहीं रखना ही स्वदारसंतोष व्रत माना जाता है। परदारनिवृति शब्द को भी इसी अर्थ में समझना चाहिए।

उपासकदशांगसूत्र में अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से मैथुन सेवन करना अब्रह्म कुशील का स्वरूप बतलाया गया है। आनन्द श्रावक ने श्रमण भगवान् महावीर से स्वदारसन्तोषव्रत का नियम लिया था मैं शिवानन्दा (पत्नी) के अतिरिक्त अन्यत्र मैथुन सेवन का प्रत्याख्यान करता हूँ।[2]

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

स्वदारसंतोष परिमाणव्रत के निम्न पाँच अतिचार बतलाए हैं–(क) इत्वरिक परिगृहीतागमन, (ख) अपरिगृहीतागमन, (ग) अनंगक्रीडा, (घ) परविवाहकरण तथा (ङ) कामभोगतीव्राभिलाषा।[3]

तत्त्वार्थसूत्रकार इनसे कुछ भिन्न पाँच अतिचार मानते हैं। उनके अनुसार परविवाहकरण, इत्वरिपरिग्रहीतागमन, अपरिग्रहीतागमन, अनंगक्रीडा और

---

1. उपाकसा०, 405
2. सदारसंतोसीए परिमाणं करेइ, नन्नत्थ एक्काए सिवानंदाए
भारियाए, अवसेसं सव्वं मेहुणविहिं पच्चक्खामि।।
उपा०सू०, 1/16
3. तयाणंतर च णं सदा-सन्तोसिए पंच अइयारा जाणियव्वा न
समारियव्वा तंजहा-इत्तरियपरिग्गहियागमने, अपरिग्गहियागमने,
अणंगकीडा, परविवाहकरणे कामभोगतिव्वाभिलासे।। उपा०सू०, 1/44

तीव्रकामाभिनिवेश-ये पाँच अतिचार हैं[1] जबकि रत्नकरण्डकश्रावकाचार में अन्यविवाहरकण, अनंगक्रीडा, विटत्व, विपुलतृष्णा और व्यभिचारिणी स्त्रियों के यहाँ गमन करना-इन पाँच अतिचारों की गणना की गई है।[2]

इस प्रकार प्रस्तुत व्रत के अतिचारों के नाम व क्रम में आंशिक भिन्नता है। परिणामस्वरूप कुछ अर्थभेद भी दृष्टिगोचर होता है। उपासकदशांगसूत्र में जहाँ पहला अतिचार इत्वरिपरिगृहीतागमन है, वहाँ तत्त्वार्थसूत्र में परविवाहकरण है। परविवाहकरण उपासकदशांगसूत्र में चौथे नम्बर पर है जबकि परविवाहकरण को आचार्य समन्तभद्र ने अन्यविवाहरकण व सोमदेव ने परस्त्री संगम कहा है। आचार्य समन्तभद्र ने ब्रह्मचर्याणुव्रत के चौथे अतिचार में विटत्व का प्रयोग करके शारीरिक कुचेष्टाओं, अश्लीलतव तथा भद्दे वचनों के प्रयोग को भी अतिचार माना है। वहीं उपासकाध्ययनकार ने विटत्व के स्थान पर कैतव्य शब्द का प्रयोग करके झूठ, धोखा और जालसाज़ी को भी इस व्रत के अतिचारों में ग्रहण किया है। इन सभी का यहाँ विशेष अध्ययन करते हैं-

इत्वरिकपरिगृहीतागमन

कुछ दिन अथवा महिने के लिए किराए पर रखी स्त्री से मैथुन सेवन करना इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार कहलाता है।[3] सागारधर्मामृत में बिना स्वामी वाली असदाचारिणी स्त्री को इत्वरिका कहा जाता है, उसे गमन के समय रुपया देकर कुछ काल के लिए अपना बनाना भी दोष है।[4]

इस अतिचार का एक और अर्थ भी कतिपय आचार्य करते हैं कि यदि लड़की का लघु अवस्था में श्रावक के साथ विवाह हो गया हो, किन्तु जब तक उसकी योग्य अवस्था न हो जाए, तब तक उसके समागम का विचार करने आदि से व्रत कलंकित हो जाता है।[5]

---

[1] परविवाहकरणेत्वपरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनऽनंग क्रीडा तीव्र कामाभिनिवेश:।।
त०स०, 7/23

[2] अन्यविवाहाकरणानंग-क्रीडाविटत्वविपुल वृष:।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतिचारा:।। रत्न०, 3/14

[3] 'इत्तरिय परिग्गहियागमने' त्ति इत्वरकालपरिगृहीता कालशब्दलोपादि त्वरपरिगृहीता-भाटीप्रदानेन कियन्तमपि कांल दिवसमासादिकं स्वशीकृतेत्यर्थ:।।
उपा०टीका, पृ० 32

[4] सागार०, 4/58 पर व्याख्या।

[5] जै०त०, क० (अष्टम कलिका), पृ० 259

अपरिगृहीतागमन

वेश्या को या पति द्वारा परित्यक्त या अनाथ को पैसा देकर अपना बना लेना को अपरिगृहीतागमन कहते हैं।[1] वेश्या या अन्य पुरुष में आसक्त भाड़े पर ग्रहण की गई अनाथ अथवा कुलीन स्त्री अपरिगृहीता कहलाती है, ऐसी स्त्री में गमन करना अपरिगृहीतागमन है।

जो मूर्ख पतिरहित परस्त्रियों की अथवा अविवाहित स्त्रियों की इच्छा करते हैं, उनके व्रत में अपरिग्रहीता इत्वरिकागमन नाम का अतिचार तो लगता ही है,[2] साथ ही महापाप का उपार्जन भी हो जाता है। अत: इस प्रकार के व्यभिचार से मनुष्य को सदैव बचना ही चाहिए।

अनंग क्रीडा

काम सेवन के अंगों से भिन्न अंगों के द्वारा मैथुन सेवन करना अनंग क्रीडा है।[3] स्वप्न में वीर्यपात हो जाना अथवा किसी भी स्त्री के समागम के बिना खोटी चेष्टा करना, खोटी क्रिया करना,[4] योनि को छोड़कर रागपूर्वक पुरुष द्वारा शरीर पर यत्र-तत्र जो क्रीडा की जाती है वह सब अनंगक्रीडा[5] अतिचार ही कहलाता है।

परविवाहकरण

अपने अथवा अपनी संतान को छोड़कर दूसरे का विवाह करना या करवाना परविवाहकरण अतिचार है। दूसरे का विवाह करवाकर उसको मैथुन में प्रवृत्ति कराना अनर्थक है, यह स्वदारसंतोषीव्रत वाले को समुचित नहीं है। इस प्रकार बिना विचार किए दूसरे का विवाह करने के लिए उद्यत होने से परविवाहकरण अतिचार का दोष लगता है।[6]

---

[1] 'अपरिग्गहियागमणे' त्ति अपरिगृहीतानामवेश्या अन्यसक्कपरिगृहीता भाटिका कुलांगना वा अनाथेति, अस्याप्याप्यतिचारताऽतिक्रमादिभिरेव।। उपा०टीका, पृ० 33

[2] प्रश्नो०श्राव० 15/48

[3] अनंगक्रीडति अनंगानि मैथुनकम्मा।।
उपा० टीका, पृ० 33

[4] दोषश्चानंग क्रीडारव्य: स्वप्नादौ शुक्रविच्युति:।
विनापि कामिनीसंगात्क्रिया वा कुत्सितोदिता।।
लाटी० 5/77

[5] प्रश्नो०श्राव० 14/49

[6] (क) परेषाम् आत्मन आत्मीयापत्येभ्यश्च व्यतिरिक्तानां।
विवाहकरणं परविवाहरकणं.... परार्थकरणोद्यततयाऽतिचारो।। उपा० टीका, पृ० 33
(ख) लाटी० 5/74, (ग) चारित्र, 240

कामभोगतीव्राभिलाषा

स्त्री के शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श में अत्यन्त अनुराग रखना कामभोग-तीव्राभिलाषा अतिचार है-कामौ-शब्दरूपे, भोगा:-गन्धरसस्पर्शास्तेषु तीव्राभिलाष:।[1] जो बुद्धिमान काम सेवन में अत्यन्त तृष्णा रखता है और अग्नि के समान जिसे सन्तोष होता ही नहीं, उसको कामतीव्राभिनिवेश नाम का अतिचार लगता है।[2]

इस प्रकार स्वदार संतोषी व्रती को इन अतिचारों के दोषों से सदैव सावधान रहना चाहिए, जिससे संयम की विराधना न हो और जीवन सुखी एवं वैभव सम्पन्न हो।

5. इच्छाविधिपरिमाणव्रत

श्रावक का यह व्रत अपरिग्रह अणुव्रत के नाम से भी जाना जाता है। परिग्रह और इच्छा आकांक्षा में यहाँ कोई भेद नहीं है। श्रमण की तरह श्रावक के लिए परिग्रह का पूर्ण त्याग करना संभव नहीं है, गृहस्थावस्था में रहने के कारण श्रावक अपने एवं अपने परिवार के भरण-पोषण, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समाज में मान मर्यादा व अतिथिसत्कार एवं श्रमणों के ग्रहण करने योग्य उपकरणों को जुटाने हेतु परिग्रह अवश्य करता है, किन्तु इस व्रत को ग्रहण करके श्रावक अपनी मर्यादा एवं परिस्थिति के अनुसार इच्छाओं को सीमित करने का संकल्प करता है।

इस व्रत को धारण करने वाला श्रावक खेत, वस्तु, सोना, धन-धान्य, चांदी, द्विपद, चतुष्पद, गृहसामग्री आदि की सीमा निर्धारित कर उनका समुचित उपभोग करता है।[3] उपासकदशांगसूत्र में आनन्दश्रावक ने भी वस्तुओं की मर्यादा निश्चित की थी।[4] तत्त्वार्थसूत्र में मूर्छा परिग्रह[5] ऐसा कहकर बाह्य वस्तुओं व आन्तरिक वस्तुओं में जो रागभाव अर्थात् आसक्ति है, उसे परिग्रह कहा है। गृहस्थ धर्म में आचार्य जवाहरलाल जी ने परिग्रह की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है-परिग्रहाणां परिग्रह[6] अर्थात् जो ममत्व भाव से ग्रहण किया जाए, वही परिग्रह है। रत्नकरण्डकश्रावकाचार में धन धान्य आदि का परिग्रह परिमाण करके उससे अधिक में निस्पृह रहने को परिमित परिग्रहव्रत कहा है :-

---

1. उपा० टीका, पृ० 33
2. (क) प्रश्नो०श्राव०, 14/50, (ख) लाटी० 5/78
3. उपा०सू० 1/45
4. वही, 1/17-21
5. त०सू०, 7/12
6. गृहस्थ० II, पृ० 155

> धनधान्यादि ग्रन्थं परिमाप ततोऽधिकेषु निस्पृहता।
> परिमितपरिग्रह: स्यादिच्छापरिमाणनामापि।।[1]

श्रावकधर्मदर्शन में परिग्रह को पाप बताते हुए उपाध्याय जी लिखते हैं कि परिग्रह भी एक प्रकार का पाप है, क्योंकि वह मानव को पतन के गहरे गर्त में डाल देता है। उसकी विवेक बुद्धि विचार शक्ति व सत्यशोधन की रुचि को नष्ट कर देता है।[2] स्थानांगसूत्र में परिग्रह के कर्मपरिग्रह, शरीरपरिग्रह और वस्तुपरिग्रह यह तीन प्रकार के परिग्रह माने हैं[3] जबकि श्रावक प्रतिक्रमण में परिग्रह के नौ प्रकार बताए हैं।[4] इस प्रकार हैं :-

1. क्षेत्र का अर्थ है-उपजाऊ भूमि की मर्यादा। इसमें खेत, खलिहान, चारागाह, बाग, बगीचा, पहाड़ आदि सभी प्रकार की खुली भूमि का समावेश होता है।
2. वास्तु में मकान, दुकान, गोदाम, अतिथिगृह, बंगला, कारखाना आदि अर्थ लिया जाता है।
3. सुवर्ण-स्वर्ण, स्वर्ण के बर्तन, आभूषण, सोने की घड़ी, पेन आदि इसमें आते हैं।
4. धन-रुपये, पैसे, सिक्के, नोट, ड्राफ्ट, चेक, बैंक बैलेंस आदि धन कहलाता है।
5. हिरण्य-चांदी के बर्तन व आभूषण तथा चांदी के अन्य उपकरण आदि हिरण्य कहे गये हैं। नि:संदेह कोश ग्रंथों में हिरण्य का अर्थ सोना सुवर्ण ही किया गया है किन्तु यहाँ हिरण्य को चांदी और उससे निर्मित होने वाले अन्य उपकरण एवं आभूषणों आदि को ही लिया गया है।
6. धान्य में अन्न, गेहूं, चावल, उड़द, मूंग, तिल, मटर आदि अनाज में आते हैं।

---

1. रत्न० 3/15
2. श्रा०ध०द०, पृ० 359
3. तिविधे परिग्गहे पण्णत्ते, तंजहा-कम्म परिग्गहे, शरीर परिग्गहे बाहिरभंडमत परिग्गहे।
   स्था०सू०, 3/1/95
4. पांचवाँ अणुव्रत-थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं, खेत्तवत्थु का
   यथापरिमाण, हिरण्ण सुवण्ण का यथापरिमाण, धन-धान्य का यथा-
   परिमाण, दुपय-चउप्पय का यथापरिमाण, कुविय धातु का यथापरिमाण।
   आव०सू०, 5, पृ० 101